सत्यांश

जिंदगी के सफर में बहुधा ऐसे अवसर मिलते हैं जब दूसरों का परिचय लेना होता है, अपनी पहचान औरों को बतानी पड़ती है। कभी-कभी चाहकर भी परिचय नहीं हो पाता। अपनी पहचान छुपाने या गलत पहचान बताने की जानी-अनजानी जरूरत, मजबूरी और साजिश की बात ही अलग है। साधारणतः जब सीधे या किसी अन्य के माध्यम से पूछा जाता है कि आप, आपका परिचय? आप कौन हैं? तब के उत्तर पर जाने से पूर्व यह भी याद कर लेना आवश्यक है कि जरूरी नहीं कि हमेशा परिचय पूछने की जरूरत पड़े ही। बिना पूछे-बताए भी अनेक सज्जन परिचय लेते-देते हैं। यह व्यक्ति-व्यक्ति के अपने-अपने स्वभाव-ढंग पर निर्भर करता है। अक्सर ओहदे वाले लोग अपनी संस्था या विभागीय पदनाम से अपनी पहचान बताते हैं। बहुत लोग अपने नौकरी-पेशे, व्यवसाय, कार्य को सूचित कर अपना परिचय देते हैं। इसी प्रकार किसी-किसी के लिए उसकी शैक्षिक डिग्री-उपाधि पहचान का आधार होती है, किसी को मिले पुरस्कार व सम्मान उसकी अस्मिता का परिचायक होता है। किसी की आदत, किसी की पोशाक, किसी की कद-काठी, किसी की गाड़ी, किसी का घर उसकी पहचान सुनिश्चित करता है। कोई अपने पिता, पितामह, पुत्र, पति, पत्नी, भाई आदि से संबंधों के आधार पर अपनी पहचान बनाता है। कइयों के लिए जाति, क्षेत्र-स्थान, धर्म-संप्रदाय भी उनका परिचय होता है। पहचान बताने की इन सारी परिपाटियों में दूसरी चीजों-व्यक्तियों से अपने संबंधों को संकेतित किया जाता है जो चीजों की सापेक्षता या विपरीतता में होता है, पर यह 'स्वयं' की सापेक्षता में कितना है - विचारणीय है।

व्यक्ति का नाम उसकी सामाजिक पहचान का एक बड़ा आधार है। कैसा भी नाम-काम और कैसा भी पता-ठिकाना कामचलाऊ परिचय तो दे ही देता है। पर नाम और काम का परिचय कितनी बेपेंदी का है, इसे समझने के लिए इतना ही कहना काफी है कि अमुक नाम के बदले यदि कोई और नाम आपका होता तो वही आपके परिचय का आधार होता। इसी प्रकार हमारे सब कुछ बदले हो सकते थे, काम भी, पता भी और बदलते भी हैं। सामान्यतः संयोग या तीव्र इच्छा-शक्ति या महत्त्वाकांक्षा से जो जिसे दाय रूप में मिला है, वह अमूमन उस पहचान को पुख्ता करता है। परंतु सोचने की बात है कि आप कौन है, आपका परिचय क्या है? किसी कागजी डिग्री में लिपटे हुए और किसी भी पद को चौबीसों घंटे ढोते नहीं रह सकते। कुछ ही समय उसके दायित्वों का निर्वाह होता है और उससे प्राप्त सुविधाएँ भोगा जाता है और किसी भी एक ही चीज से तो आप जुड़कर सीमित नहीं रहते, न ही किसी एक ही रिश्ते से बँधे हैं। फिर जो चीज, जो रिश्ता अधिक 'देदीप्यमान' होता है, उसको भूलकर भी लोग पहचान से नहीं हटाते, सदैव उसकी धमक साथ होती है। नाम को भारी-भरकम बनाने के लिए उपनाम, डिग्री-उपाधि, पदनाम, पुरस्कार-सम्मान आदि नाम के आगे-पीछे जोड़ा जाता है। श्यामसुंदर दास हिन्दी के विद्वान थे। उनकी पुस्तकों में लेखक के नाम के साथ डिग्री लिखी हुई है - 'श्यामसुदंर दास, बी.ए.'। तब बी.ए. की डिग्री बड़ी बात थी, अब पीएच.डी. वाले अपने नाम के आगे डॉक्टर लिखते हैं। संभव है, समय बीतने के साथ पीएच.डी. बहुतायत के कारण श्यामसुंदर दास के जमाने वाली बी.ए. की तरह भविष्य में अधिक गणनीय न रहे। दूसरी तरफ, तबके बी.ए. की दक्षता-योग्यता आगे के पीएच.डी तक जाकर भी बरकरार रह सके तो गनीमत होगी।

डिग्री-पुरस्कार-सम्मान से जोड़कर परिचय देने की तरह ही पद के दायित्व से जोड़कर पहचान बताना ज्यादा सार्थक नहीं लगता, क्योंकि इन सब में संबंधों का इशारा होता है। हद तो तब हो जाती है, जब जिन अस्थायी चीजों के प्रति अपने संबंधों को दर्शाकर परिचय बताया जाता है, उनके न रहने पर बड़े मूर्खतापूर्ण अहंकार के कारण ढोया जाता है, जैसे भूतपूर्व मुख्यमंत्री, पूर्व सांसद-विधायक, पूर्व सचिव आदि। बहुत-सारे पदधारी सेवानिवृत्ति के बाद भी पद नाम के मोह से मुक्त नहीं होते जैसे न्यायाधीश, सेना के पदधारक आदि। कार्यकाल के समापन के बाद भी पूर्व या भूतपूर्व आगे जोड़कर पदनाम का प्रयोग जीवन भर और मृत्यु के बाद भी चलता रहता है। एक कथन स्मरणीय है कि मुख्यमंत्री, विधायक का पद जा सकता है, लेकिन पूर्व मुख्यमंत्री, पूर्व विधायक यदि हैं तो सदैव रहेंगे। यह पूर्व का पद कोई ले नहीं सकता। सेवानिवृत्ति के बाद भी अपने संस्थान और पद का बिल्ला लगाए रखने का उद्देश्य अलग-अलग होता है, जो अतीत के सबल पक्ष को अपनी पहचान बताता है। जिसका अतीत और वर्तमान दोनों उल्लेखनीय नहीं होता, वह भविष्य की योजना बताकर अपना परिचय सुनिश्चित करना चाहता है।

इन सबके बावजूद यह असमंजस विद्यमान है कि क्या हम-आप यही सब हैं? एकदम भौतिक नजरिये से भी ऐसी पहचान सार्थक नहीं लगती। क्या हम ब्राह्मण, हरिजन, प्राध्यापक, वकील, चिकित्सक, नेता, अधिकारी, कर्मचारी, स्त्री, पुरुष, हिन्दू, मुस्लिम, बिहारी, पंजाबी, भाई, बहन, पिता, पुत्र ही हैं या इन संबंधों के भीतर-बाहर अनगिनत दायित्वों-संबंधों को नहीं निभा रहे हैं? इन सबमें हमारा नाम हो सकता है, काम हो सकता है, दायित्व हो सकता है, अधिकार हो सकता है, परंतु मनुष्यता की पहचान इसमें कितना और कहाँ हैं? यह प्रश्न हमारे व्यक्तिगत जीवन की सोच और स्वाभिमान से भी जुड़ा है, सामाजिक बुनावट से भी और आत्मिक दर्शन-अध्यात्म से भी।

आधुनिक समय में परिचय लेने-देने की रीति-नीति भी बाजारू किस्म की उपयोगितावादी होती जा रही है, जहाँ सब चीजों से परिचय है, परंतु स्वयं से नहीं। जब स्वयं का स्वयं से भी परिचय नहीं तो भला दूसरों से स्वयं का परिचय कौन कराएगा। वस्तुतः एक तरह की आकृति, एक तरह की वर्दी, एक तरह के दायित्वों-संबंधों में भिन्न-भिन्न तरह के मन-मानस, गुणों-क्षमताओं वाले लोग होते हैं, इन भिन्नताओं का आधार कुछ हद तक विशेष पहचान होती है। इसलिए पहचान न डिग्री है, न पद है, न पेशा है, न संस्था और न संबंध। मानवीय गुणों, विशेषताओं, प्रतिभाओं की विशिष्ट आत्मिक चेतना ही हमारी असली स्थायी पहचान है। चेतना के संस्कार से जो आत्म-बोध उपलब्ध है, वही अस्मितापूर्ण पहचान है। इससे इतर तो महादेवी वर्मा के शब्दों में जीवन का पता बादल की तरह है, जिसके लिए आकाश का कोई भी कोना अपना नहीं होता। कहीं उमड़ना, कहीं घुमड़ना, कहीं बरसना ही उसकी नियति है -

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना।
परिचय इतना, इतिहास यही
कल उमड़ी थी, मिट आज चली।